सहायक वाचन

कक्षा 5

सत्रः 2026-27

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

यह पाठ्यपुस्तक शासकीय संपत्ति है। इसका क्रय-विक्रय अवैधानिक है।

प्रेरणास्रोत
डॉ. कमलप्रीत सिंह (भा.प्र.से.)
सचिव, स्कूल शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ़

मार्गदर्शक
ऋतुराज रघुवंशी (भा.प्र.से.)

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छ.ग., रायपुर

सलाहकार

जे.पी. रथ
अतिरिक्त संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छ.ग., रायपुर

के. कुमार
संयुक्त संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छ.ग., रायपुर

समन्वयक
कौस्तुभ चटर्जी (सहायक संचालक)
डॉ.डी.के.बोदले (से.नि.सहायक प्राध्यापक)

विषयवस्तु चयन तथा संपादन
डॉ. चितरंजन कर, श्री बलदाऊ राम साहू

विषय विशेषज्ञ
श्री महेश कुमार वर्मा, श्री सुधीर गौतम, डॉ. जय भारती चंद्राकर

लेखन समूह
श्री विनय शरण सिंह, श्री श्याम नारायण श्रीवास्तव , श्री सीताराम साहू,
श्री पोखन लाल जायसवाल, श्री द्रोण साहू, श्रीमती मल्लिका रुद्रा,
श्रीमती प्रिया जोशी, श्रीमती रजनी शर्मा

टंकण
श्री गौरव सिंह ठाकुर,
श्रीमती मीनाक्षी मिश्रा

आवरण, पृष्ठांकन एवं लेआऊट डिजाईन
हिमांशु वर्मा, सुधीर कुमार वैष्णव

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

आमुख

छत्तीसगढ़ स्कूली शिक्षा में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की पुस्तकों को अनुकूलित कर बच्चों को राष्ट्रीय स्तर के समतुल्य लाने का प्रयास किया जा रहा है, ताकि राज्य के बच्चे किसी भी स्तर पर कमतर न रहें। साथ ही वे राज्य के पर्व-परंपराओं और कला- संस्कृति से भी परिचित हो सकें। इस उद्देश्य से छत्तीसगढ़ शासन स्कूल शिक्षा विभाग ने कक्षा 3 से 8 तक के विद्यार्थियों के लिए सहायक-वाचन निर्माण करने का निर्णय लिया है। इस पुस्तक के माध्यम से वाचन के प्रमुख उद्देश्य, जैसे- पठन में रुचि का विकास, अर्थ ग्रहण करने की क्षमता, अभिव्यक्ति कौशल का संवर्धन, कल्पनाशीलता एवं चिंतन शक्ति का विकास करना है, जिससे बच्चे स्वतः स्फूर्त पठन एवं वाचन की ओर प्रेरित हों सकें और उनमें स्वतंत्र रूप से सीखने की प्रवृत्ति विकसित हो सके।

यह पुस्तक पाठ्यपुस्तक से इतर है। इस पुस्तक में रोचक कहानियों, कविताओं एवं महापुरुषों की जीवनियों के साथ साथ स्थानीय इतिहास, कला-संस्कृति, तीज -त्यौहार, पर्व-परंपराओं आदि की जानकारियां दी गई हैं। प्रायः ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों को पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त पढ़ने के लिए पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध नहीं होती, इस कारण वे बहुत-सी जरुरी जानकारियाँ प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं।

आज शिक्षा के परिदृश्य में आमूल-चूल परिवर्तन आया है। अब बच्चे स्थानीय न होकर वैश्विक हो गए हैं। ज्ञान बढ़ा है तो प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बाल-केंद्रित शिक्षा, अनुभव आधारित शिक्षा एवं समृद्ध भाषाई शिक्षा पर विशेष बल देती है। इसलिए इस पुस्तक को तैयार करने में बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाया गया है, ताकि बच्चे केवल पढ़ना ही न सीखें, बल्कि पढ़कर समझें, सोचें और तथ्यों को अपने अनुभवों से जोड़ सकें।

हम जानते हैं कि भारत का अपना गौरवशाली और समृद्ध इतिहास रहा है। इस समृद्ध इतिहास के साथ-साथ वे राज्य के स्थानीय कला-संस्कृति, इतिहास और लोक-जीवन को जानें और उस पर गर्व कर सकें। यह इस पुस्तक का व्यापक उद्देश्य है।

यह पुस्तक प्रायोगिक संस्करण के रूप में प्रस्तुत की जा रही है। इस संदर्भ में विद्यार्थियों, शिक्षकों , पालकों एवं शिक्षाविदों से विनम्र अपेक्षा है कि वे हमें अपने बहुमूल्य सुझाव प्रदान करें, ताकि आगामी समय में इस पुस्तक को और अधिक उपयोगी, प्रभावी एवं छात्र केंद्रित बनाया जा सके।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक शिक्षकों के लिए शिक्षण को अधिक प्रभावी एवं रोचक बनाने में उपयोगी सिद्ध होगी तथा विद्यार्थियों के सर्वांगींण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे।

इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए पुस्तक निर्माण से जुड़े सभी शिक्षाविदों, विशेषज्ञों, लेखकों एवं सहयोगियों को हार्दिक शुभकामनाएं और बधाई देता हूँ।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण,
रायपुर छत्तीसगढ़

शिक्षकों के लिए निर्देश

छत्तीसगढ़ शासन की विशिष्ट सोच के अनुरूप कक्षा तीसरी से आठवीं तक के विद्यार्थियों के लिए सहायक वाचन पुस्तक का निर्माण राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के द्वारा किया गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य विद्यार्थियों में पठन के प्रति रुचि विकसित करना, स्वतः स्फूर्त वाचन की आदत डालना तथा उनकी भाषा, चिंतन क्षमता का विकास करना तथा छत्तीसगढ़ के सामाजिक परिवेश से परिचित कराना है। अतः राज्य के विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों से अपेक्षा की जाती हैं कि वे शासन की मंशा के अनुरूप सहायक वाचन पुस्तक के प्रभावी उपयोग से बच्चों में अपेक्षित दक्षताओं का विकास के लिए आनंदमय वातावरण निर्मित करें।

शिक्षकों से निम्नलिखित बिंदुओं के अनुसार शिक्षण कार्य करने की अपेक्षा की जाती है—

1. सहायक वाचन को परीक्षा की दृष्टिकोण से प्रस्तुत न करें।बल्कि कक्षा में सहज, रोचक एवं सहभागितापूर्ण वातावरण बनाएँ, ताकि बच्चे इसे उत्साहपूर्वक पढ़ने के लिए तैयार रहे।

2. विद्यार्थियों को स्वयं पढ़ने, समझने एवं अपने शब्दों में अभिव्यक्त करने का अवसर दें।

3. बच्चों से क्रमशः सस्वर वाचन, समूह वाचन तथा मौन वाचन करवाएँ, जिससे स्पष्ट उच्चारण एवं अर्थग्रहण की क्षमता का विकास हो सके।

4. पाठों को बच्चों के परिवेश, स्थानीय संस्कृति, तीज-त्यौहार एवं दैनिक जीवन से जोड़कर समझाएँ, ताकि वे विषयवस्तु को सहज रूप से आत्मसात कर सकें। छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति, महापुरुषों, ऐतिहासिक स्थलों और जैव-विविधता पर चर्चा कर समझ विकसित करें। यदि पाठ किसी विशेष जिले या त्यौहार (जैसे: हरेली, तीजा) पर आधारित है, तो बच्चों को उनके व्यक्तिगत अनुभवों को साझा करने के लिए प्रोत्साहित करें।

5. पाठ पढ़ाने के बाद बच्चों से प्रश्न पूछें, उनके विचार सुनें तथा चर्चा कराएँ। इससे उनमें आत्मविश्वास एवं अभिव्यक्ति कौशल का विकास होगा।

6. कक्षा में कहानी कथन, चित्रांकन, भूमिका निर्वहन, कविता वाचन, समूह चर्चा

एवं लेखन जैसी गतिविधियों के माध्यम से सीखने को रोचक बनाएँ।

7. पाठों में निहित मानवीय संवेदनाओं, नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक सरोकारों को बच्चों के जीवन से जोड़कर समझाएँ।

8. बच्चों को नियमित रूप से पुस्तक पढ़ने हेतु अतिरिक्त पठन सामग्री के उपयोग के लिए प्रेरित करें।

9. कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी को पढ़ने एवं बोलने का अवसर दें। धीमी गति से सीखने वाले एवं संकोची बच्चों पर विशेष ध्यान देवें।

10.महापुरुषों या लोक कथाओं पर आधारित पाठों का कक्षा में मंचन करवाएँ।

11. बच्चों को छत्तीसगढ़ के पारंपरिक खान-पान, खेलकूद, आभूषण, तीज-त्योहार या औजारों के बारे में जानकारी एकत्र करने हेतु प्रोजेक्ट कार्य दें।

13. सहायक वाचन का मूल्यांकन पारंपरिक रटने वाली पद्धति से नहीं होना चाहिए। बल्कि मूल्यांकन के लिए खुले प्रश्न पूछें, जैसे: "यदि आप उस जगह होते तो क्या करते?" या "आपको इस कहानी का कौन सा पात्र सबसे अच्छा लगा और क्यों?" आदि।

टीप- यह पुस्तक एक प्रायोगिक संस्करण है। अतः शिक्षकगण अपने अनुभव एवं सुझाव साझा करें, ताकि भविष्य में पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण,
रायपुर छत्तीसगढ़

राज्य शिक्षा स्थायी समिति, छत्तीसगढ़

नाम	पद नाम
1. श्री आलोक चक्रवाल, कुलपति, गुरु घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर	- अध्यक्ष
2. संचालक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर	- सदस्य सचिव
3. संचालक, लोक शिक्षण संचालनालय, छत्तीसगढ़	- सदस्य
4. मिशन संचालक, समग्र शिक्षा, रायपुर, छत्तीसगढ़	- सदस्य
5. डॉ. वासुदेव साहसी, सहा.प्रा., शा.जे. योगानंदम छ.ग. महाविद्यालय, रायपुर	- सदस्य
6. डॉ. सुभाष चन्द्राकर, प्राध्या., दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर	- सदस्य
7. श्री मनीष देवांगन, वि.खं. शिक्षा अधिकारी, कार्या. धरसींवा, जिला-रायपुर	- सदस्य
8.श्री नरेन्द्र सिंह राजपूत, सहा. शिक्षक, प्राथ. विद्या. सिंवनी, खुर्द (बोडला), जिला-कबीरधाम	- सदस्य
9. श्री मनोज सिंह, शा. शिक्षा महाविद्यालय, बिलासपुर	- सदस्य
10. श्री दिलीप केसरवानी, पूर्व प्राचार्य, कबीर नगर, रायपुर	- सदस्य

अनुक्रमणिका

पाठ सामग्री		पृष्ठ क्रमांक
1. देश से प्यार (कविता)	श्री कृष्ण सरल	1
2. कितनी मुर्ग़ियाँ, कितने हाथी ? (कहानी)	लेखक मंडल	3
3. नवाखाई (आलेख)	लेखक मंडल	6
4. आदर्श भाई : भरत और लक्ष्मण	लेखक मंडल	8
5. वीरवर महाराणा प्रताप	लेखक मंडल	9
6. दुलार सिंह साव मँदराजी (जीवनी)	लेखक मंडल	11
7. हमें पता है (कविता)	लेखक मंडल	12
8. आरुणि की गुरुभक्ति (कहानी)	लेखक मंडल	13
9. भरत का भारत (चित्रकथा)	लेखक मंडल	15
10. कामधेनु (कहानी)	लेखक मंडल	17
11. बाँसगीत (आलेख)	लेखक मंडल	18
12. साँप और चूहा (लोककथा)	लेखक मंडल	20
13. लोक पर्व : तीजा (आलेख)	लेखक मंडल	22
14. राष्ट्र नायक सुभाष चंद्र बोस	लेखक मंडल	24
15. सरहुल (आलेख)	लेखक मंडल	26
16. बाबा मैं इंसान बनूँगा (कविता)	लेखक मंडल	27
17. वीर बालिका : मैना (आलेख)	लेखक मंडल	28
18. छत्तीसगढ़ का पारंपरिक खेल - पिट्ठुल	लेखक मंडल	30
19. डॉ. खूबचंद बघेल (आलेख)	लेखक मंडल	32
20. सर्दियों में मेंढक कहाँ चले जाते हैं ? (आलेख)	लेखक मंडल	33
21. विधान पुरुष : घनश्याम सिंह गुप्त (आलेख)	लेखक मंडल	35
नोट्स		37

देश से प्यार

जिसे देश से प्यार नहीं है
जीने का अधिकार नहीं है।

जीने को तो पशु भी जीते
अपना पेट भरा करते हैं
कुछ दिन इस दुनिया में रहकर
वे अन्ततः मरा करते हैं।
ऐसे जीवन और मरण को,
होता यह संसार नहीं है
जीने का अधिकार नहीं है।

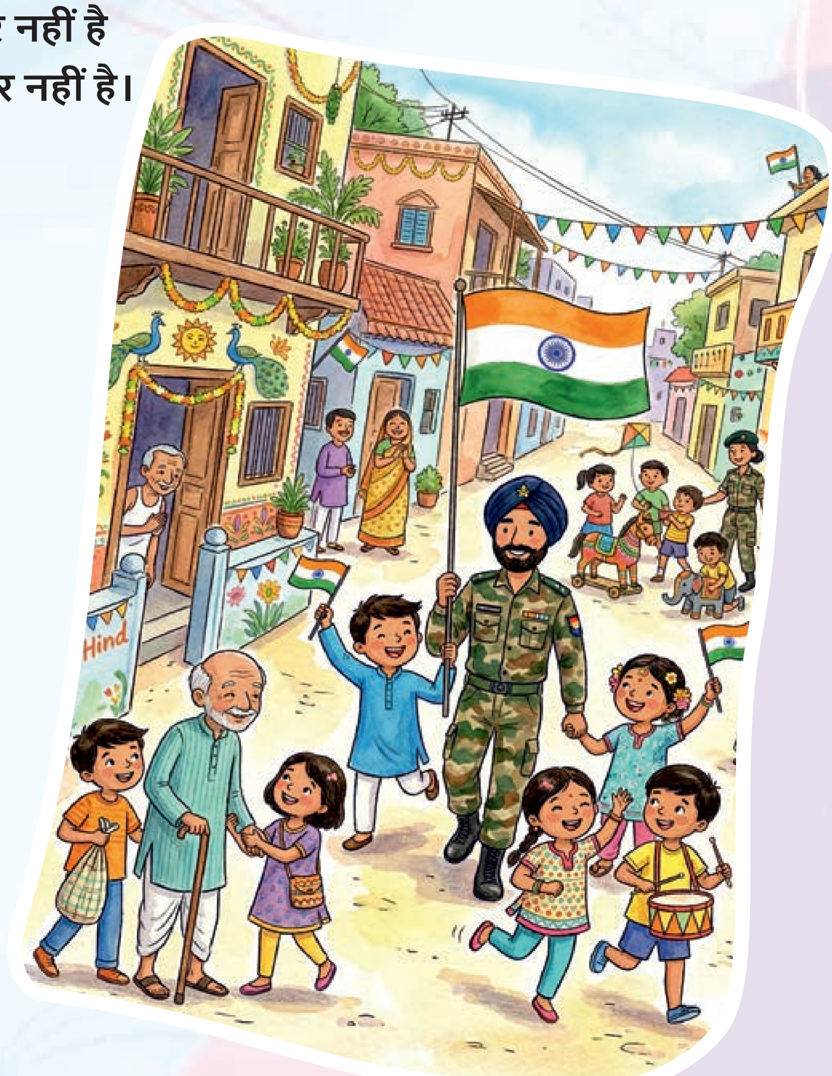

मानव वह है स्वयं जिए जो
और दूसरों को जीने दे,
जीवन-रस जो खुद पीता वह
उसे दूसरों को पीने दे।
साथ नहीं दे जो औरों का
क्या वह जीवन भार नहीं है?
जीने का अधिकार नहीं है।

साँसें गिनने को आगे भी
साँसों का उपयोग करो कुछ
काम आ सके जो समाज के
तुम ऐसा उद्योग करो कुछ।
क्या उसको सरिता कह सकते
जिसमें बहती धार नहीं है ?
जीने का अधिकार नहीं है।

कितनी मुर्ग़ियाँ, कितने हाथी ?

बात बहुत पुरानी है। सुंदरगढ़ के राजा थे विक्रम बहादुर सिंह। बहुत ही नेक, न्यायप्रिय और खुशमिज़ाज। मनोरंजन उन्हें बहुत पसंद था। उन्होंने दो दरबारी तो ऐसे नियुक्त कर रखे थे, जो अपनी अजीब हरकतों से सबको हँसाते रहते थे। कभी-कभी तो कुछ उलटा-पुलटा करके लोगों को हैरानी में भी डाल देते थे। राजा ने उनका नाम ही अजब और ग़ज़ब रख दिया था। वे बहुत बुद्धिमान थे। उनमें दो बड़ी विशेषताएँ थीं। एक तो वे किसी भी प्रश्न का सीधा उत्तर नहीं देते थे, जैसे-एक दिन अजब अपने बेटे के साथ बाज़ार गए थे। किसी ने पूछ लिया, अजब जी, "यह बालक कौन है ?"

उन्होंने कहा, "यह मेरी छोटी बेटी की माँ का बेटा है।" अब आप सोचिए, चाहते तो सीधे-सीधे कह सकते थे कि मेरा बेटा है। मतलब उनके उत्तर भी उलझे, पर मनोरंजक होते थे। दूसरी विशेषता यह थी कि वे दोनों हाथी के गुणों के अच्छे पारखी थे। दरअसल राजा को हाथी पालने का बहुत शौक था, इसलिए इन दोनों को दरबार में रखा गया था। राजा के पास पहले से कई हाथी और घोड़े थे।

एक बार की घटना है। नगर के नज़दीक दशहरे का मेला लगा हुआ था। वहाँ जानवरों और पक्षियों का मेला भी लगता था। उस मेले में हाथी, ऊँट, गाय, भैंस, बकरी, मुर्ग़ी, तोता, मैना, बुलबुल, तीतर, बटेर आदि सब बिकते थे। राजा ने इन दोनों दरबारियों को बुलाया। उन्हें ढेर सारा धन देकर मेले में भेजा। मेले से उन्हें कुछ हाथी और मुर्ग़ियाँ खरीदकर लानी थीं। अजब-ग़ज़ब ने अपने साथ कुछ महावत और अन्य नौकरों को भी साथ में लिया। घोड़ों पर सवार होकर वे मेले में पहुँच गए। उन्होंने ग़ौर से देखा, जाँचा-परखा फिर हाथी के साथ-साथ कुछ मुर्ग़ियाँ भी खरीदीं। एक बार उन्हें गिना भी। इसके बाद महावतों और अन्य नौकरों से कहा, "इन्हें लेकर चलो। हम दरबार में बताकर आते हैं।" वे वापस आकर बोले, "महाराज हमने मुर्ग़ियाँ और हाथी दोनों खरीद लिए।"

"बहुत अच्छा। तो दरबार को बताइए कि आपने कितने हाथी और कितनी मुर्ग़ियाँ खरीदीं ?"

"अरे महराज ! यह तो मैं भूल ही गया। हाँ, एक बात मुझे अच्छी तरह याद है। सभी जानवरों की कुल मिलाकर बहत्तर आँखें थीं।"

अच्छा, ग़ज़ब, आप बताइए। "महराज, क्या है कि मुझे रास्ते में भूख लग गई। वहाँ ठेले पर चाट और गुपचुप (पानी-पूरी) वाला मिल गया। वह एक टके के दस गुपचुप खिला रहा था, तो मैं उसे गिनकर खाने लगा। उनकी गिनतियों के बीच मैं मुर्ग़ियों और

हाथियों की संख्या तो भूल ही गया। लेकिन महाराज, एक बात मुझे भी अच्छी तरह से याद है। उन सबके कुल चौहत्तर पैर थे।" अब राजा उनकी पहेली सुनकर सोच में पड़ गए।

तभी महामंत्री ने कहा, "महाराज एक बात तो तय है कि हाथियों और मुर्ग़ियों की कुल संख्या छत्तीस होनी चाहिए।"

"यह आप कैसे कह सकते हैं महामंत्री, आप वहाँ गए थे क्या ?"

"नहीं महाराज, जब हमारे अजब जी बता रहे हैं, कुल बहत्तर आँखें थीं, तो चाहे मुर्ग़ी हो या हाथी, किसी के भी दो ही आँखें होती हैं। 'बहत्तर आँखों' का मतलब संख्या छत्तीस ही होगी न।

राजा बोले, "यह बात तो सही है, किंतु अलग-अलग कितने हाथी, कितनी मुर्ग़ियाँ होंगी ? यह कैसे पता चलेगा ?"

सभी सोच में पड़ गए। तभी अजब और ग़ज़ब वहाँ आ गए। तब जाकर पता चला कि उन दोनों ने एक हाथी और पैंतीस मुर्ग़ियाँ खरीदी थीं।

दादी बताती हैं कि तब से गाँव में यह पहेली चली आ रही है कि-

"चौहत्तर गोड़ बहत्तर आँखी, कतका मुर्गी, कतका हाथी ?"

नवाखाई

बस्तर अंचल छत्तीसगढ़ का आदिवासी बहुल क्षेत्र है, जहाँ प्रकृति, कृषि और परंपराओं से जुड़े अनेक त्योहार मनाए जाते हैं। इन्हीं में से एक प्रमुख और लोकप्रिय त्योहार है नवाखाई। यह त्योहार नई फ़सल के स्वागत और अन्न के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का पर्व है। 'नवा' का अर्थ है नया और 'खाई' का अर्थ है खाना, अर्थात नई फसल का पहला अन्न ग्रहण करना।

नवाखाई मुख्यतः भाद्रपद या आश्विन मास में खरीफ की फ़सल पकने के बाद मनाया जाता है। इस समय खेतों में धान तैयार हो जाता है। किसान नई फ़सल काटकर घर लाते हैं और पर्व की तैयारी करते हैं। यह पर्व बस्तर के अलावा छत्तीसगढ़ के अन्य अंचलों तथा ओड़िसा व झारखंड में भी श्रद्धा के साथ मनाया जाता है।

त्योहार की शुरुआत गाँव की देवगुड़ी में पूजा-अर्चना से होती है। कुड़ई के पत्तों से बने दोने-पत्तलों में ग्रामवासी, माँझी, गायता और पटेल मिलकर नए धान की बालियाँ एवं नए चावल देवी-देवताओं को अर्पित करते हैं। पहले धरती माता, ग्राम

देवता और पूर्वजों को भोग लगाया जाता है, फिर पूरे गाँव के लोग नई फ़सल से बने पकवान ग्रहण करते हैं।

नवाखाई के दिन लोग अपने परिवार के साथ नए चावल की खीर बनाते हैं और कुड़ई पत्ते के दोने-पत्तलों में भोजन करते हैं। माना जाता है कि कुड़ई के पत्तों में विशेष औषधीय गुण होते हैं इसलिए इन पत्तों में भोजन करने से शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। इस प्रकार यह पर्व स्वास्थ्य और प्रकृति से जुड़ाव को भी दर्शाता है।

नवाखाई का यह पर्व सामाजिक एकता का प्रतीक भी है। लोग नए वस्त्र पहनते हैं, एक-दूसरे से मिलते हैं और बड़े-छोटों का सम्मान करते हैं। बस्तर क्षेत्र में इस अवसर पर पारंपरिक नृत्य, गीत तथा माँदर-ढोल की धुन पर उत्सव मनाया जाता है। कई गाँवों में सामूहिक भोज और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

नवाखाई केवल फ़सल का पर्व नहीं, बल्कि बस्तर की आदिवासी संस्कृति की पहचान है। यह त्योहार सामूहिक- जीवन, परंपरा और प्रकृति - प्रेम का सुंदर संदेश देता है।

आदर्श भाई : भरत और लक्ष्मण

अयोध्या के राजा दशरथ के चार पुत्र थे—राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। चारों भाइयों में बहुत प्रेम था। उनमें भरत और लक्ष्मण अपने भाई श्रीराम से विशेष स्नेह करते थे।

लक्ष्मण जी श्रीराम से बहुत प्रेम करते थे। जब श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास मिला, तब लक्ष्मण भी उनके साथ वन चले गए। उन्होंने जंगल में रहकर अपने भाई और माता सीता की सेवा की। वे हमेशा उनकी रक्षा के लिए तैयार रहते थे। पंचवटी में गर्मी, वर्षा और ठंड जैसे किसी भी मौसम की परवाह किए बिना वे पर्ण कुटीर के बाहर सदैव तैनात रहते थे। लक्ष्मण साहसी, सेवाभावी और कर्तव्यनिष्ठ थे।

भरत जी उस समय अयोध्या में नहीं थे। जब वे लौटे, तब उन्हें पता चला कि श्रीराम वन चले गए हैं और उन्हें राजा बनाया जा रहा है। यह सुनकर भरत बहुत दुःखी हुए। उन्होंने राज्य लेने से मना कर दिया। वे श्रीराम को वापस लाने के लिए वन गए।

श्रीराम ने पिता की आज्ञा का पालन करने की बात कही। तब भरत जी श्रीराम की खड़ाऊ लेकर अयोध्या लौट आए। उन्होंने खड़ाऊ को सिंहासन पर रखकर राज्य चलाया। भरत जी ने राजमहल का सुख त्याग दिया । वे चौदह वर्षों तक एक कुटिया में साधारण जीवन बिताते हुए राजकाज संभालते रहे। भरत का अपने भाई के प्रति प्रेम और त्याग बहुत महान था।

भरत और लक्ष्मण हमें सिखाते हैं कि भाइयों में प्रेम, त्याग और सहयोग होना चाहिए। हमें भी अपने परिवार के लोगों से प्रेम करना चाहिए और कठिन समय में उनका साथ देना चाहिए।

वीरवर महाराणा प्रताप

राजपूतों के पराक्रम ने अकबर के होश ठिकाने लगा दिए । वह समझ गया कि युद्ध में उनसे जीतना कठिन है। राजस्थान के बालू के कणों में असंख्य फौलादी वीर भरे पड़े थे। वे संगठित न थे। अकबर ने इसी का लाभ उठाया। वह स्वभाव से बड़ा चालाक था। अतः साम, दाम, दंड, भेद की नीति से उसने व्यवहार प्रारंभ कर दिया। कई राजा उसकी चाल में फँस गए । एक राज्य उसके धोखे में नहीं आया। वह था मेवाड़ का स्वाभिमानी राज्य। चित्तौड़ इसकी राजधानी थी। महाराणा संग्राम सिंह के नाती महाराणा प्रताप इन दिनों वहाँ के शासक थे। भगवान एकलिंग उनके कुल देवता थे। चित्तौड़ के शासक भगवान एकलिंग को ही मेवाड़ का स्वामी व स्वयं को उनका सेवक मानकर राज्य की रक्षा करते थे। वे भूले न थे कि अकबर एक विदेशी राजा है। वह मीठा भले ही बोलता हो परंतु था तो विदेशी ही। उनके पिता के काल में मेवाड़ ने अकबर की सेना के अत्याचार देखे । वे खोए हुए राज्य को वापस लेने के लिए उतावले थे। महाराणा प्रताप ऐसे ही समय में राजा बने थे। उनकी राजधानी घोड़े की पीठ पर रहती थी। हिमालय सा उनका मस्तक कभी झुकने को तैयार न था। वे जंगलों में रहते थे। भीलों को संगठित करके शत्रु पर वे बाज की तरह टूट पड़ते थे। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मेवाड़ वापस नहीं ले लेंगे तब तक न सोने-चाँदी के बर्तनों में खाएँगे, न पलंग पर सोएँगे।

राजपूत लोग तो उन्हें प्राणों से भी बढ़कर मानते थे। जंगल-जंगल भटकना, भूखे-प्यासे रहना, बच्चों को घास की रोटी खिलाना उन्हें स्वीकार था परंतु अकबर की दासता उन्हें स्वीकार न थी। उसी समय एक दानवीर सपूत ने आश्चर्य का काम कर दिखलाया।

उनका नाम था भामाशाह । वे मेवाड़ के वर्षों तक मंत्री रहे थे। उनके पास अपार धन था। स्वाधीनता के बिना धन कैसा? धन-दौलत तो भगवान की होती है। वह देश की धरती से पैदा होती है। अतः उसके काम न आई तो किस काम की ? भामाशाह का यही विचार था। उन्होंने अपनी सारी संपत्ति महाराणा के चरणों में भेंट कर दी। वह धन इतना था कि बारह हजार सैनिक बारह वर्ष तक युद्ध कर सकते थे। उसी से एक विशाल सेना खड़ी की गई। स्वाधीनता संग्राम के नगाड़े बज उठे।

अनेक राजपूत राजा अकबर के सामने अपने हथियार डाल चुके थे और अपने को धन्य मान रहे थे। आज वे उनकी चाकरी कर रहे थे। पराक्रमी होने के बाद भी वे स्वाभिमान खो बैठे थे। ऐसे ही लोगों में जयपुर के महाराजा मानसिंह भी थे। एक दिन वे भी महाराणा को समझाने के लिए आ पहुँचे । स्वाभिमानी महाराणा प्रताप ने उन जैसे स्वाभिमान खोये व्यक्ति के साथ भोजन तक करना स्वीकार न किया। फिर क्या था, मानसिंह चिढ़ गए । उन्होंने महाराणा को नीचा दिखलाने की मानों प्रतिज्ञा कर ली। देश और धर्म को व्यक्तिगत अपमान की वेदी पर चढ़ा डाला। उन्हें अपने पराये का, स्वदेशी-विदेशी का तनिक भी ध्यान न रहा।

हल्दीघाटी के मैदान में घमासान युद्ध हुआ। अकबर की नीति काम कर गई। उसने इस तरह भारतीय शूरवीरों को आपस में ही लड़ा दिया। वह बड़ा चालाक व्यक्ति था। उसने सेनापति के रूप में अपने लड़के सलीम को भेजा था। उसे मानसिंह पर भी भरोसा न था। मानसिंह उसी की चाकरी करने में मस्त था। सैनिक सलीम से पूछते थे, "दोनों ओर राजपूत हैं, जहाँपनाह। किसे मारें ?"

सलीम का उत्तर था, "किसी को मारो। जीत अपनी ही होगी।"

शत्रु-मित्र का कितना सही ज्ञान था उसको ? राजपूतों ने अपनी जान की बाजी लगा दी। बलिदानियों के रक्त से हल्दीघाटी की मिट्टी लाल हो गई। वह भूमि आज हमारे लिए एक तीर्थस्थान बन गई है। महाराणा को बचाते-बचाते उनके प्रमुख सरदार मानझाला युद्धभूमि में काम आ गए । अंतिम युद्ध घातक होगा। अतः महाराणा को बचा लिया गया । इस आड़े समय में महाराणा के छोटे भाई शक्तिसिंह का भातृ-प्रेम जाग उठा। उनका प्रिय घोड़ा चेतक भी चल बसा । आज भी वहाँ चेतक की समाधि बनी है। आगे युद्ध का रूप बदल गया। छापामार लड़ाई आरंभ हो गई। महाराणा ने अकबर को चैन की साँस न लेने दी। चित्तौड़ नगर को छोड़कर सारा मेवाड़ राज्य पुनः स्वाधीन हो गया। एक-एक करके उन्होंने देखते-देखते अनेक दुर्ग जीत डाले। राजपूती शान अमर बनी रही।

दुलार सिंह साव 'दाऊ मँदराजी'

दाऊ मंदारजी

छत्तीसगढ़ की लोक परंपरा में दाऊ मँदराजी का नाम कौन नहीं जानता। छत्तीसगढ़ी लोक मंच पर जब वे हारमोनियम लेकर आते थे, तो दर्शकों की तालियों से पूरा क्षेत्र गूँज उठता था। वे विलक्षण हारमोनियम-वादक थे।

"तोला जोगी जानेंव रे भाई तोला साधू जानेंव गा। राजा लंकापति रावन ल मँय साधू जानेंव।" यह अमर गीत बुलवाराम यादव जब परी बनकर गाते थे, तब सीता पर आई विपत्ति का चित्र शब्द और ध्वनि से कुछ इस तरह मंच पर खिंच जाता था कि स्त्रियाँ रोने लगतीं। दाऊ मँदराजी वचन के पक्के थे। एक अवसर पर वे नाचा प्रस्तुति के लिए नारियल लेकर वचन दे बैठे थे। उनका बच्चा बीमार था। ठीक प्रस्तुति के लिए निर्धारित दिन को ही उनका बच्चा चल बसा। बच्चे की लाश को घर में छोड़कर वे उस गाँव गए, जहाँ प्रस्तुति देनी थी। रात भर हारमोनियम बजाने के बाद वे सुबह रोते हुए घर आए। तब लोगों ने जाना कि अपनी कला के प्रति उनका कितना अनुराग था।

दाऊ मँदराजी का 'रिंगनी रवेली साज' 1928 में स्थापित हुआ। यह 1953 तक चला। हारमोनियम के साथ दाऊ मँदराजी चिकारा, तबला वादन और गायन में भी सिद्ध थे। मशाल नाचा में वे चिकारा बजाते थे। चिकारा बजाने वाले हाथों ने ही हारमोनियम को साधा और नाचा को नई ऊँचाई दी। 1911 में ग्राम रवेली, जिला राजनाँदगाँव में जनमे मँदराजी का निधन 24 दिसंबर, 1984 में हुआ। उनकी परंपरा को 'चँदैनी गोंदा' के माध्यम से श्री खुमान साव जीवन-पर्यंत सींचते रहे।

इस कलाकार की स्मृति में छत्तीसगढ़ शासन ने दो लाख रुपए का पुरस्कार घोषित कर सही निर्णय लिया, जो कल के लिए सब कुछ लुटाकर फक़ीर हो गए। उनके नाम पर इनाम से एक कलाकार को उचित सम्मान मिल जाता है। वे जीवन-भर मंच पर थिरकते कलाकारों के हित के लिए छायादार वृक्ष की तरह तने रहे। उनके जाने के बाद भी उनका परोपकारी स्वरूप विस्तारित होता जा रहा है।

हमें पता है

आसमान में कितने तारे, पता नहीं,
सिर पर कितने बाल हमारे,पता नहीं।

सागर में कितना है पानी, पता नहीं,
पूछो तो कह देती नानी, पता नहीं।

दाने कितने पड़े खेत में, पता नहीं,
कितने कण हैं, पड़ी रेत में, पता नहीं।

वन में कितने पेड़ खड़े हैं, पता नहीं,
कितने छोटे और बड़े हैं, पता नहीं।

पेड़ों में कितने पत्ते हैं, पता नहीं,
उनमें कितने फल लगते हैं, पता नहीं।

पर पुस्तक में पाठ हैं कितने, हमें पता है,
उनमें से भी याद हैं कितने, हमें पता है।

भाषा में कितने अक्षर हैं, हमें पता है,
कितने व्यंजन, कितने स्वर हैं, हमें पता है।

कक्षा में कितने बच्चे हैं, हमें पता है,
सारे पढ़ने में अच्छे हैं, हमें पता है।

आरुणि की गुरुभक्ति

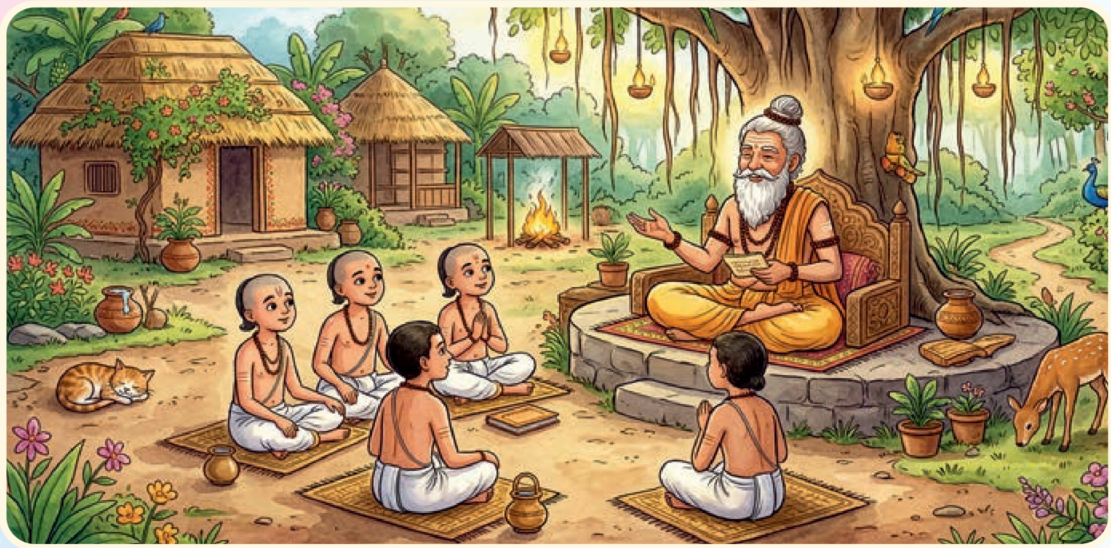

हमारे देश में सदियों से गुरु के आदेश का पालन शिष्य करता रहा है। गुरु की आज्ञा के पालन से जुड़ी आदर्श कथाओं में शिष्य 'आरुणि' का नाम भी बहुत चर्चित है।

बहुत पहले की बात है। आयोद धौम्य नामक एक प्रसिद्ध महर्षि थे। उनके तीन प्रमुख शिष्य थे। आरुणि, उपमन्यु और वेद। इसमें आरुणि पांचाल देश का वासी था। वह एक आज्ञाकारी शिष्य था। एक दिन बहुत तेज वर्षा हो रही थी। जैसे ही वर्षा रुकी, गुरु जी ने आरुणि को बुलाकर खेत पर भेजा।

"आरुणि। तुम खेत की ओर चले जाओ। वर्षा बहुत तेज हो रही थी। यदि तेज बहाव के कारण कहीं मेड़ टूट गए हों, तो उन्हें बाँध देना।"

"जी, गुरु जी", कहकर आरुणि खेत की ओर चला गया।

वहाँ जाकर आरुणि ने देखा, तेज वर्षा के कारण खेत की कई मेड़ें टूटी हुई थीं। उसने दो-तीन मेड़ों को मिट्टी से बाँध दिया, लेकिन एक मेड़ को बाँधने में, वह सफल नहीं हुआ। वहाँ पानी तेजी से बह रहा था।

आरुणि ने सोचा, "अरे ! यदि यह मेड़ मैं नहीं बाँध पाया, तो खेत की ऊपरी सतह की उपजाऊ मिट्टी बह जाएगी। वह फिर से मेड़ बाँधने लगा, लेकिन असफल रहा। पानी अभी भी तेजी से बह रहा था।

उसे एक उपाय सूझा, "कटे हुए मेड़ के पास यदि स्वयं लेट जाऊँ, तो पानी रुक जाएगा।"

बस फिर क्या था, आरुणि जल्दी से टूटी हुई मेड़ पर लेट गया। सचमुच पानी बहना बंद हो गया। आरुणि अब लेटे–लेटे सोच रहा था। यदि वह उठेगा तो फिर पानी बहने लगेगा, अत: वह नहीं उठा। खेत की टूटी हुई मेड़ की जगह ही वह लेटा रहा।

इधर कई घंटे बाद गुरु जी ने शिष्यों से पूछा, "देखो तो, आरुणि कहाँ चला गया ? बहुत देर से दिखाई नहीं पड़ रहा है।"

एक शिष्य ने विनम्रता से कहा, "गुरु जी। आपने ही तो उसे मेड़ बाँधने के लिए खेत की ओर भेजा था।"

गुरु जी ने आश्चर्य से कहा, "अरे ! उसे तो अब तक लौट आना चाहिए था। चलो, खेत की ओर चलकर देखते हैं।"

गुरु जी के साथ सभी शिष्य खेत की ओर गए। आरुणि वहाँ एक टूटी हुए मेड़ पर लेटा हुआ था, जिससे वह किसी को दिखाई नहीं दिया, तो गुरु जी ने आवाज दी –

"आरुणि! बेटे तुम कहाँ हो ? यहाँ आओ।"

आरुणि ने वहीं से उत्तर दिया, "गुरु जी। "मैं यहाँ हूँ।"

इसी के साथ आरुणि मेड़ से उठकर गुरु जी के सामने आकर खड़ा हो गया। गुरु जी के सामने हाथ जोड़कर आरुणि ने बताया, "गुरु जी ! तेज जल-प्रवाह के कारण टूटी मेड़ को मैं ठीक से नहीं बाँध पा रहा था तो जल रोकने हेतु मैं वहाँ स्वयं लेट गया था। आपके पुकारने पर यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।

गुरु जी कुछ देर तक शांत रहे, फिर भावुक होकर बोले, "पुत्र ! तुमने मेरे आदेश का पालन करने हेतु अपने शरीर को इतना कष्ट दिया। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि संपूर्ण वेद और धर्म-शास्त्र, तुम्हारी बुद्धि में शीघ्र ही समाहित हो जाएँ।" आगे चलकर आरुणि भी एक महान ऋषि बना।

भरत का भारत

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस कहावत का आशय यह है कि वीर, ज्ञानी और गुणी व्यक्ति की झलक उसके बचपन से ही दिखाई देने लगती है। हमारे देश में अनेक महापुरुष हुए हैं। ऐसे ही एक वीर, प्रतापी व साहसी बालक भरत थे।

भरत, राजा दुष्यंत के पुत्र थे और उनकी माता का नाम शकुंतला था। शकुंतला ऋषि कण्व की दत्तक पुत्री थी ।

बालक भरत का चरित्र बहुत ही अद्भुत और प्रेरणादायक है।

भरत बचपन से ही बहुत साहसी और निडर थे। उनका पालन-पोषण जंगल के शांत और सुंदर वातावरण में हुआ। वे महर्षि कण्व के आश्रम में रहकर बड़े हुए और वहीं उन्होंने शिक्षा प्राप्त की।

आश्रम का जीवन बहुत सादा और अनुशासित होता था। भरत भी अन्य बालकों की तरह पढ़ाई करते, खेलते और गुरुओं की सेवा करते थे, लेकिन उनमें एक खास बात थी उनकी बहादुरी। वे जंगल के जानवरों से बिल्कुल भी नहीं डरते थे। कहते हैं कि वे शेरों और अन्य पशुओं के साथ खेलते थे और उनके सामने भी निडर बने रहते थे।

एक प्रसिद्ध कथा के अनुसार, भरत शेर के बच्चों के साथ खेलते थे और कभी-कभी तो वे शेर के दाँत तक गिनने लगते थे। यह देखकर आश्रम के सभी लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे। इतनी छोटी उम्र में भी उनका साहस सभी के मन में कौतुहल पैदा करता था। शेर को वश में करने की क्षमता के कारण उनका एक नाम 'सर्वदमन' भी था।

भरत केवल बहादुर ही नहीं थे, बल्कि वे बहुत बुद्धिमान और आज्ञाकारी भी थे। वे अपने गुरुजनों की बात ध्यान से सुनते थे और हमेशा अच्छे काम करने की कोशिश करते थे। उनकी यही विशेषताएँ उन्हें एक महान व्यक्तित्व बनाती हैं। भरत का बचपन हमें यह सिखाता है कि हमें डर पर विजय पाकर साहसी बनना चाहिए। गुरुओं के बताए मार्ग पर चलना चाहिए तथा सदैव हमें अपने गुरुजनों, माता-पिता का आदर करना चाहिए और अच्छे गुणों को अपनाना चाहिए।

भरत बड़े होकर एक प्रतापी चक्रवर्ती सम्राट बने, जिनका शासनकाल भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है। ऐसा माना जाता है कि इन्हीं के नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।

कामधेनु

प्राचीन काल में एक मुनि हुए, जिनका नाम था अष्टावक्र। उनके पास एक गाय थी, जिसका नाम था कामधेनु। वह गाय सदैव दूध देती थी तथा उससे जो भी माँगा जाए, वह प्रदान करती थी। ऐसी अनोखी गाय के बारे में जब इंद्र को पता चला, तो उसे लगा कि ऐसी गाय तो उसके पास होनी चाहिए, क्योंकि वह देवताओं का राजा है।

इंद्र अष्टावक्र के आश्रम में पहुँचा। उसने अष्टावक्र से कामधेनु माँगी तथा यह कहा कि यदि वे शांतिपूर्वक गाय नहीं देंगे, तो इंद्र गाय को बलपूर्वक ले जाएगा। यह सुनकर अष्टावक्र चिंतित हो उठे। वे इंद्र की शक्ति का सामना नहीं कर सकते थे। उन्हें कामधेनु से बहुत लगाव था। उन्होंने चिंतित दृष्टि से कामधेनु की ओर देखा, तो कामधेनु ने उन्हें समझाया कि वह चिंता न करें और स्पष्ट मना कर दें। मुनि ने ऐसा ही किया।

मुनि अष्टावक्र का यह दुस्साहस देखकर इंद्र ने अपनी विशाल सेना बुला ली और युद्ध प्रारंभ कर दिया। कामधेनु ने अपनी सींग से धरती पर प्रहार किया तो पाताल लोक से अनगिनत सेनाएँ निकल आईं फिर उसने अपनी पूँछ फटकाई, तो अनेक सैनिक निकल आए, जो इंद्र की सेना पर टूट पड़े। कामधेनु ने नथूने फुलाकर फुँफकार भरी, तो तेज हवाएँ चलने लगीं और इंद्र के सैनिकों के हथियार हवा में उड़ने लगे।

अंततः इंद्र पराजित हुआ। उसने मुनि अष्टावक्र से क्षमा माँगी और वापस स्वर्गलोक चला गया।

बाँसगीत

छत्तीसगढ़ का लोक-साहित्य और लोककला अथाह समुद्र की तरह है। लोक-साहित्य की अनेक विधाओं में लोकगाथा प्रमुख है। गाथा-गायन की भी अनेक शैलियाँ हैं। इनमें बाँसगीत-गायन प्रमुख है। बाँसगीत का आशय उन कथागीतों से है, जिन्हें बाँस नामक लोक-वाद्य के साथ गाया जाता है। बाँसगीत-गायन की परंपरा केवल छत्तीसगढ़ में ही पाई जाती है।

यह लोक-वाद्य अपने नाम के अनुरूप बाँस से ही बनाया जाता है। बाँसुरी का यह बृहद् रूप है। लगभग डेढ़ इंच व्यास के बाँस से बने इस लोक-वाद्य की लंबाई लगभग साढ़े तीन फुट होती है। इसमें चार छेद होते हैं, जिनमें तीव्र व घोर गर्जन वाले स्वर निकलते हैं। दिखने में यह जितना सहज है, वादन में उतना ही कठिन है। बाँस बजाने वाला 'बाँसकार' कहलाता है। बाँसगीत टोली में तीन से लेकर पाँच लोक-कलाकार होते हैं। कथा-गायक व बाँसकार प्रमुख होते हैं। गायक का सहयोगी रागी कहलाता है, जो बीच-बीच में 'टेही' भी देता है।

बाँसगीत गायन की परंपरा उतनी ही प्राचीन है जितनी मानव-सभ्यता। बाँसगीत की परंपरा पूरी तरह से चरवाहा संस्कृति से प्रभावित है। बाँसगीत के लोक-कलाकार

चरवाहा संस्कृति के संपोषक हैं। इनका प्रमुख कार्य पशु चराना है। पशु चराने वाले ये लोग छत्तीसगढ़ में यादव कहलाते हैं। ये अपने को श्रीकृष्ण के वंशज मानते हैं।

बाँसगीत कथा-गायक अपनी क्षमता के अनुसार विभिन्न लोकगीत शैलियों को शामिल करते हुए चलता है। जिसमें श्रोता-समुदाय आनंदित हो जाता है। बाँसगीत के प्रारंभ में देवी-देवताओं की प्रार्थना की परंपरा है -

सदा भवानी दाहिनी संगी, सन्मुख गौरी-गनेश।

पाँच देव मिल रक्षा करे, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

बाँसगीत-गायन में एक निश्चित टेक की पुनरावृत्ति स्थान-स्थान पर की जाती है। यह इसकी अपनी पहचान है -

तरि हरि मोर नाहना रे भईया, मोर नह नरि मोर नाहना हो।

तरि हरि मोर नाहना रे भईया, मोर नह नरि मोर नाहना हो।

और फिर इस टेक के साथ गाथा विस्तार पाती है। बीच-बीच में बाँस का मोहक स्वर गायन को और भी रसयुक्त करता चलता है -

कलमी दईहान में भइया, मोर कंठी ये ठेठवार हो,

गरुवा ल चरावै भइया, मोर पानी ल पियावै हो।

बाँसगीत गायन में लोक परंपरा की एक बानगी देखिए - कथा प्रसंग छहुरा जन्म का है। माता अहल्या व पाटन की रानी दोनों गर्भवती हैं। दोनों जब घटौंदे में मिलती हैं, तो दोनों गंगाजल लेकर मितानीन बन जाती हैं। इसी प्रसंग में लोक का चित्रण देखिए। गर्भवती माता अहल्या प्रसव-पीड़ा से पीड़ित है -

वाह गोरतरिया रे भइया वाह मुरसरिया ये न

गिंजरन लागे माता मोर, धाँय अँगना धाँय खोर

बाँसगीत में छत्तीसगढ़ की लोक-परंपरा और लोक-आस्था को स्वर मिला है। बाँसगीत की अधिकतर गाथाओं में यादव जाति की परंपरा और उसके जातीय चरित्र की बहुलता है। लोरिक चंदा, कंठी ठेठवार, कुँवर अछरिया, छहुरा जनम, अहिमन रानी आदि की कथाएँ इसका प्रमाण हैं।

साँप और चूहा

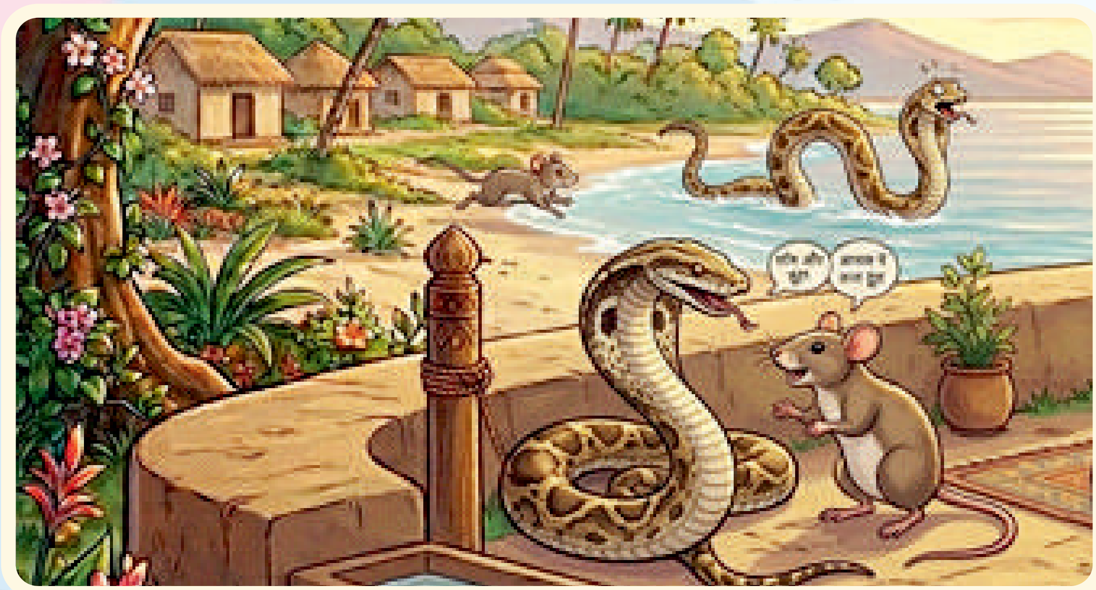

बहुत पुरानी बात है। उस समय नाग भी अन्य साँपों की तरह ही था।उसका सिर न ही चपटा था और न ही चौड़ा। वह चूहों को खाता भी नहीं था। सब लोग एक साथ मिल-जुलकर रहते थे।

एक दिन की बात है। साँप और एक चूहा आस-पास ही खाना ढूँढ़ रहे थे। साँप बहुत लंबा था इसलिए उसका सिर एक जगह रहता, तो उसकी पूँछ कहीं दूसरी जगह होती थी। चूहा खाना ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अनजाने में ही खाना समझकर साँप की पूँछ को पकड़ लेता था। साँप ने एक बार तो कुछ नहीं कहा; दूसरी बार भी चुप रहा; पर तीसरी बार उससे रहा नहीं गया। उसने चूहे से कहा,"दोस्त, यह कोई खाने की चीज़ नहीं है,बल्कि मेरी पूँछ है। बिलकुल वैसी ही जैसी तुम्हारी है।" चूहे ने भी बड़े भोलेपन से जवाब दिया," माफ़ करना दोस्त, अनजाने में हो गया, क्योंकि तुम बहुत लंबे हो, तुम्हारी पूँछ कहीं रहती है और तुम्हारा सिर कहीं और रहता है, तो मुझे लगता है कि तुम दूर निकल चुके होते हो और मैं तुम्हारी पूँछ को खाने की कोई चीज़ समझकर पकड़ लेता हूँ।"

दोनों फिर से खाना ढूँढने लगे, पर चूहे ने फिर से वही हरकत दुबारा की। एक बार दो बार नहीं, बल्कि बार-बार अब साँप का गुस्सा सीमा से बाहर हो गया। वह सीधे चूहे की ओर झपटा और चूहा भागने लगा।भागते-भागते वह एक बिल में घुस गया। नाग भी उसके पीछे-पीछे बिल में घुस गया।चूहा बिल के दूसरे सिरे में निकला। साँप भी उसके

पीछे-पीछे निकल आया।चूहा आगे-आगे और साँप उसके पीछे-पीछे।

चूहा भागते-भागते एक किसान के पास गया। उसने किसान से विनती की,"किसान भैया! मुझे बचा लो। साँप मुझे मारना चाहता है।" किसान ने कहा," चूहा भाई! मैं तो एक किसान हूँ। धान उगाता हूँ। मैं साँप को मार नहीं सकता। तुम बाल काटने वाले के पास जाओ।"

चूहा बाल काटने वाले के पास दौड़ा। उसने बाल काटने वाले से भी यही विनती की। बाल काटने वाले ने कहा ,"दोस्त, मैं तो बस बाल काटने वाला हूँ। मैं तुम्हें साँप से नहीं बचा सकता। तुम लोहे के औजार बनाने वाले के पास जाओ।

अब चूहा औजार बनाने वाले के पास भागा। उसके पीछे-पीछे साँप भी दौड़ा चला जा रहा था। लोहे के औजार बनाने वाला भट्टी में लोहे को गर्म करके उस पर अपना भारी-भरकम हथौड़ा चला रहा था। औजार बनाने वाले का हथौड़ा थोड़ा ऊपर उठा ही था कि चूहा उसके बीच में से कूदकर उस पार निकल गया। साँप भी उसके पीछे-पीछे कूद रहा था, पर साँप के ठीक सिर के पास औजार बनाने वाले का भारी-भरकम हथौड़ा आ गिरा, धम्म। साँप वहीं बेहोश हो गया। जब साँप को होश आया, तो वहाँ न तो कोई चूहा था और न ही लोहे के औजार बनाने वाला। सभी डरकर भाग गए थे। साँप ने अपने सिर को छुआ तो उसे महसूस हुआ कि उसके सिर के बाद वाला भाग चपटा हो चुका है। अब वह अन्य साँपों से अलग दिख रहा था। उस दिन से साँप का फन बन गया और साँप और चूहे में दुश्मनी हो गई।

लोक-पर्व : तीजा

छत्तीसगढ़ में हरतालिका तीज को ही 'तीजा' के नाम से जाना जाता है, जो भाद्रपद (भादों माह) के शुक्ल पक्ष की तृतीया को मनाया जाता है। महिलाएँ इस त्योहार को अपने पति की लंबी आयु और परिवार की समृद्धि के लिए निर्जला व्रत रखकर मनाती हैं। मान्यता है कि माता पार्वती ने भगवान शंकर को प्रसन्न करने के लिए निर्जला व्रत रखा। इसी व्रत का पालन करते हुए माता पार्वती ने अन्नजल का त्याग कर दिया। इसी कारण उनका नाम अपर्णा पड़ा। इसी परंपरा में माताएँ तथा बहनें पति की दीर्घायु के लिए कामना करतीं हैं।

तीजा के समय बेटी व बहनों को पिता या भाई द्वारा अपने घर लाया जाता है। बहनों-बेटियों को साल भर से तीजा की प्रतीक्षा रहती है। नव-विवाहिता बहनों को प्रथम वर्ष आषाढ़ माह में तीजा के लिए मायके लाते हैं। यह मायके के प्रति उनके अनन्य प्रेम को प्रकट करने वाला त्योहार है।

पोरा के रोटी धर के,
भइया मोर आवत होही।
तीजा लेगे बर मोला,
भइया मोर आवत होही।

छत्तीसगढ़ की महिलाएँ अपने मायके में रहकर तीजा के दिन करू भात (करेले की सब्ज़ी और भात) खाने की परंपरा का पालन करती हैं। इसके बाद उनका व्रत प्रारंभ होता है, जो अगली रात तक चलता है। तीजहारिन बहनें पीपल या बरगद पेड़ में झूला बनाकर झूलतीं, एक-दूसरे को झुलाती हैं, गीत गाते, हँसी-ठिठोली करते हैं, अपने ससुराल की आपबीती सुनती-सुनाती हैं। इस प्रकार व्रत का लंबा लगने वाला समय कट जाता है। वे एक-दूसरे के पारिवारिक जीवन से परिचित होती हैं। झूला झुलते हुए गीत चलता है -

झूलना झुलथे यशोदा जी के लाल,

झुलना झुलावे गोपी ग्वाल,

तीजा रहने वाली तिजहारिन को साड़ी उपहार में दी जाती है। यह उक्ति भी प्रचलित है कि - "मायके के फरिया अमोल" अर्थात मायके से कपड़े का टुकड़ा भी मिलता है, तो अनमोल होता है। इस त्योहार में छत्तीसगढ़ की अपनी लोक-परंपरा है, जिसमें श्रद्धा-भक्ति, अपनापन और उदारता समाई हुई है।

राष्ट्र नायक सुभाष चंद्र बोस

"तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा" व "जय हिन्द" के नारों से देशवासियों में अभूतपूर्व उर्जा का संचार करने वाले महापुरुष सुभाषचंद्र बोस का नाम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है। वे एक ओजस्वी वक्ता और राष्ट्रवादी नेता के रूप भे जाने जाते थे। उनके भाषण युवाओं में जोश भर देते थे। उन्होंने 'आजाद हिंद सेना' का गठनकर अँग्रेजो को चुनौती दी।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस का जन्म 23 जनवरी, 1897 को कटक, उड़ीसा (अब ओडिशा) में हुआ। उनके पिता जानकीनाथ बोस कटक के एक मशहूर वकील थे। उनकी माता का नाम प्रभावती देवी था। सुभाषचंद्र बोस अपने माता-पिता की 14 संतानों में से नौवीं संतान थे। वे एक प्रतिभा संपन्न और होनहार बालक थे।

नेताजी सुभाषचंद्र अदम्य साहसी और दूरदर्शी थे। उन्होंने आईसीएस (ICS) परीक्षा उत्तीर्ण करने के बावजूद देश-सेवा के लिए सरकारी नौकरी छोड़ दी।

वे स्वामी विवेकानंद और चितरंजन दास को अपना आदर्श मानते थे। नेताजी भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर थे। उनकी अद्भुत नेतृत्व क्षमता की सराहना गाँधीजी भी करते थे। आजाद हिंद फौज के सर्वोच्च कमांडर होने के कारण उन्हें 'नेताजी' कहा जाता था।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस एक विलक्षण व्यक्तित्व के धनी थे। उनके बारे में जितना कहा जाए कम है। वे एक महान सेनापति, वीर सैनिक, राजनीति के अद्भुत खिलाड़ी और सफल कूटनीतिज्ञ थे। नेताजी की दृष्टि में राष्ट्र सर्वोपरी था। वे महान राष्ट्र-भक्त थे।

उन्होंने आजाद हिंद फौज में महिलाओं के लिए 'झांसी की रानी' विशेष रेजिमेंट बनाई, जो महिला सशक्तीकरण का बड़ा उदाहरण था।

उनके सम्मान में भारत सरकार के द्वारा 2018 में अंडमान के 'रॉस द्वीप' का नाम बदलकर 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस द्वीप' रखा गया। संसद भवन के सेंट्रल हॉल में उनकी आदमकद तस्वीर लगी हुई है।

नेताजी की रहस्यमयी मृत्यु 18 अगस्त 1945 को ताइवान में एक विमान दुर्घटना में हुई, यह माना जाता है, लेकिन आज भी यह रहस्य बना हुआ है।

नेताजी' की जयंती को भारत में 'पराक्रम दिवस' के रूप में मनाया जाता है। आइए, राष्ट्र के प्रति निःस्वार्थ समर्पण करने वाले बलिदानी पुरुष को हम नमन करें।

सरहुल

लोकनृत्यों के क्षेत्र में छत्तीसगढ़ प्रारंभ से ही समृद्ध रहा है। यहाँ अनेक प्रकार के लोकनृत्य प्रचलित हैं। इन्हीं लोकनृत्यों में आदिवासियों का नृत्य 'सरहुल' एक प्रमुख नृत्य है।

यह सरगुजा, जशपुर और धरमजयगढ़ तहसील में बसने वाले उराँव जाति के लोगों का नृत्य है। आदिवासियों की मान्यता है कि साल वृक्षों के समूह में जिसे 'सरना' कहा जाता है, महादेव वास करते हैं। महादेव और पितर देवताओं को प्रसन्न करने एवं परिवार की सुख-शांति की कामना के लिए चैत्र पूर्णिमा की रात इस नृत्य का आयोजन किया जाता है। पहले सरना वृक्ष की पूजा की जाती है फिर वहीं सरहुल नृत्य किया जाता है। नृत्य के प्रारंभिक गीतों में पहले देवताओं की स्तुति की जाती है। यह नृत्य प्रकृति-पूजा का ही प्राचीन रूप है।

इस नृत्य में युवक-युवतियाँ और बुजुर्ग सभी उमंग और उल्लास से हिस्सा लेते हैं।

इसमें मुख्य रूप से माँदर और झाँझ वाद्य-यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। नृत्य में पुरुष नर्तक विशेष प्रकार का पीला साफा बाँधते हैं। नृत्य में पद-संचालन वाद्य की ताल पर नहीं, बल्कि गीतों की लय और तोड़ पर होता है।

आज ये नृत्य पाश्चात्य संस्कृति का शिकार होते जा रहे हैं। सरकार शहरों में लोकोत्सव आदि मनाकर इन संस्कृतियों के अस्तित्व की रक्षा का प्रयास कर रही है।

बाबा मैं इंसान बनूँगा

पढ़कर-लिखकर आगे बढ़कर
उन्नति की चोटी पर चढ़कर
राष्ट्र का अरमान बनूँगा।
बाबा मैं इंसान बनूँगा।
सीमा पर प्रहरी बन जाऊँ
प्राण-त्याग, शहीद कहलाऊँ
तिरंगे की पहचान बनूँगा।
बाबा मैं इंसान बनूँगा।
दीन-दुखी की सेवा करके
अपने सारे अवगुण हर के
मैं सच्चा गुणवान बनूँगा।
बाबा मैं इंसान बनूँगा।
भेद-भाव मैं नहीं करूँगा
पर-सेवा में ध्यान धरूँगा
सबका स्नेह वितान बनूँगा
बाबा मैं इंसान बनूँगा।

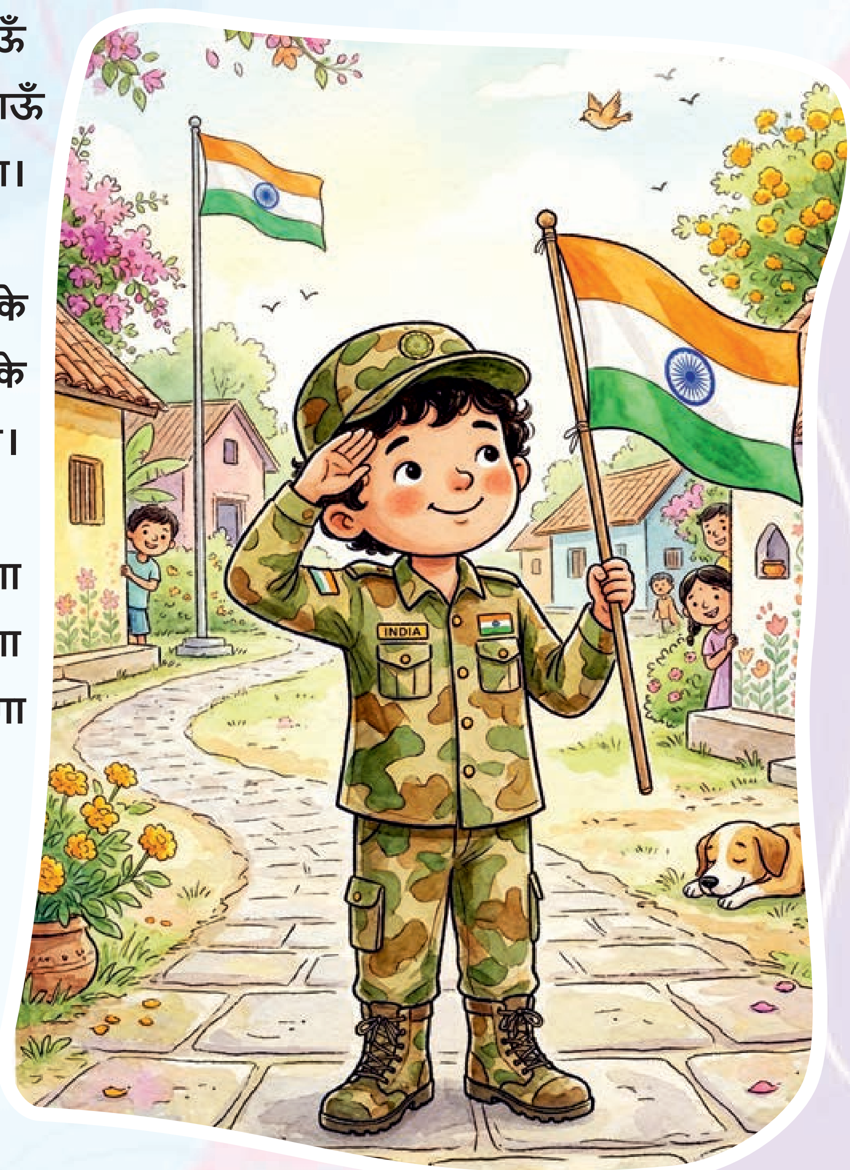

वीर बालिका : मैना

यह बात उस समय की है, जब देश की आजादी की आवाज कोने-कोने में गूँज रही थी। आजादी की क्रांति में बहुत से वीरों ने अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया था।

एक दिन 1857 की क्रांति के नेता नाना साहब अँग्रेज़ी सेना से लड़ने को निकल पड़े थे। सूचना मिलते ही अँग्रेज़ सेनापति ने अपने सैनिकों के साथ बिठूर के क़िले को घेर लिया। वह क़िले को तोपों से उड़ा देना चाहता था। उसने सोचा, पहले महल और शाही खजाने को लूट लिया जाए। सशस्त्र अँग्रेज़ी सेना क़िले में घुसी। क़िले में सन्नाटा था। सेना को तभी 13-14 वर्ष की एक बालिका महल में दिखी, जो चिल्लाकर कह रही थी, मेरे रहते कोई भी भीतर नहीं जा सकता। सेना के सिपाहियों ने उसे गिरफ़्तार कर लिया। बालिका सेनापति के सामने लाई गई।

सेनापति ने पूछा, "ऐ लड़की! तेरा नाम क्या है ?"

"मैना! नाम है मेरा"

"कौन हो तुम ?"

"नाना साहब की बेटी और तुम्हारी बेटी 'मैरी' की सहेली।" सेनापति उन दिनों बिठूर में ही तैनात था इसलिए मैना 'मैरी' को जानती थी।

सेनापति ने फिर पूछा, "नाना साहब कहाँ हैं ?"

"मुझे नहीं पता।" मैना ने जवाब दिया।

मैना नाना साहब की निडर और स्वदेश प्रेमी बेटी थी। जब नाना साहब देश छोड़कर गए तो मैना ने बिठूर के महल में ही रुकने का निर्णय लिया, क्योंकि वह अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए महल छोड़कर नहीं जाना चाहती थी।

"इस लड़की को सब पता है। पेड़ से बाँध कर मारो इसको, सब बताएगी।" सेनापति ने आदेश दिया। मैना को गिरफ़्तार कर लिया गया और उसे अनेक यातनाएँ दी गईं। मैना ने अंत तक नाना के विषय में कोई जानकारी नहीं दी। उसे जलती चिता में झोंक दिया गया, जिससे वह जीवित जल गई।

वह एक स्वाभिमानी, निडर, और स्पष्टवादी लड़की थी। उसने अपनी जान बचाने के लिए न तो माफ़ी माँगी और न ही अँग्रेज़ो के सामने कोई रहस्य उजागर किया।

छत्तीसगढ़ का पारंपरिक खेल-पिट्ठुल

छत्तीसगढ़ के ग्रामीण जीवन में खेल केवल समय बिताने का साधन नहीं, बल्कि बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण का एक सहज माध्यम रहा है। मिट्टी की खुशबू, खुले मैदान और बच्चों की टोली, इन सबके बीच पनपने वाले पारंपरिक खेलों में पिट्ठुल एक अत्यंत लोकप्रिय और रोमांचक खेल है। यह खेल बच्चों में उत्साह, फुर्ती और टीम भावना का अद्भुत संगम प्रस्तुत करता है।

पिट्ठुल खेलने के लिए किसी विशेष साधन या महंगे उपकरण की आवश्यकता नहीं होती। बस सात छोटे-छोटे समतल पत्थर और एक गेंद ही इस खेल के मुख्य साधन होते हैं। गांवों में बच्चे अक्सर घर के आसपास या खेतों के किनारे से चिकने पत्थर चुनकर लाते हैं और उन्हें एक के ऊपर एक सजाकर एक छोटी सी मीनार बना लेते हैं। यही मीनार खेल का केंद्र होती है।

इस खेल को आमतौर पर दो टीमों में बांटकर खेला जाता है। एक टीम का

खिलाड़ी गेंद से पत्थरों की इस मीनार को गिराने की कोशिश करता है। जैसे ही पत्थर बिखर जाते हैं, खेल में तेजी और रोमांच आ जाता है। जिस टीम ने पत्थर गिराए होते हैं, उनका लक्ष्य होता है कि वे दोबारा उन सात पत्थरों को उसी क्रम में जमा दें। दूसरी टीम का काम होता है गेंद से उन्हें मारकर रोकना, ताकि वे पत्थरों को फिर से न जोड़ सकें।

खेल के दौरान बच्चों की दौड़-भाग, बचाव और रणनीति देखने लायक होती है। पत्थर जोड़ने वाले खिलाड़ी अपने साथियों को संकेत देते हैं, मौके का फायदा उठाते हैं और गेंद से बचते हुए तेजी से पत्थरों को सजाने का प्रयास करते हैं। वहीं दूसरी टीम के खिलाड़ी पूरी सजगता से गेंद को पास करते हुए विरोधियों को निशाना बनाते हैं। जैसे ही पत्थरों की मीनार फिर से खड़ी हो जाती है, खेल का एक दौर पूरा हो जाता है और जीत-हार का निर्णय होता है।

छत्तीसगढ़ के गांवों में पिट्ठुल का खेल केवल प्रतिस्पर्धा नहीं, बल्कि सामूहिक आनंद का उत्सव होता है। यह खेल बच्चों को न केवल शारीरिक रूप से सक्रिय बनाता है, बल्कि उन्हें मिल-जुलकर काम करना, धैर्य रखना और त्वरित निर्णय लेना भी सिखाता है। इस खेल के माध्यम से बच्चों में कई महत्वपूर्ण जीवन-मूल्य भी विकसित होते हैं।

वे यह समझते हैं कि हार-जीत से अधिक महत्वपूर्ण खेल की भावना और आनंद है। खेल के दौरान अनुशासन, सहयोग और मित्रता जैसे गुण स्वतः ही उनके व्यवहार में शामिल हो जाते हैं।

छत्तीसगढ़ के कई क्षेत्रों में आज भी पिट्ठुल का खेल जीवित है, विशेषकर छुट्टियों और मेलों के समय बच्चे इसे बड़े उत्साह से खेलते हैं।आवश्यकता इस बात की है कि हम ऐसे पारंपरिक खेलों को संरक्षित करें और नई पीढ़ी तक पहुंचाएं। विद्यालयों में खेल-कूद की गतिविधियों में पिट्ठुल जैसे खेलों को शामिल किया जा सकता है, जिससे बच्चे अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित हो सकें और उसे आगे बढ़ा सकें।

डॉ. खूबचंद बघेल

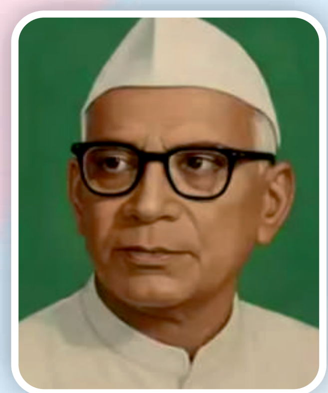

डॉ. खूबचंद बघेल

डॉ. खूबचंद बघेल का संपूर्ण जीवन समाज और कृषकों के कल्याण तथा विभिन्न रचनात्मक कार्यों के लिए समर्पित था। इनका जन्म रायपुर ज़िले के पथरी ग्राम में 19 जुलाई, 1900 को हुआ था। पिता का नाम जुड़ावन प्रसाद तथा माता का नाम केकती बाई था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में तथा हाईस्कूल की पढ़ाई रायपुर में हुई। 1925 में नागपुर से चिकित्सा परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे असिस्टेंट मेडिकल ऑफ़िसर के रूप में कार्यरत रहे।

नागपुर में अध्ययन के समय से डॉ. बघेल जी राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित होकर राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी करने लगे। महात्मा गाँधी से प्रभावित होकर गाँव-गाँव में घूमकर असहयोग-आंदोलन का प्रचार किया। वे 1930 में नमक सत्याग्रह के दौरान शासकीय नौकरी छोड़कर आंदोलन में शामिल हो गए। 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह में तीसरी बार जेल गए। 1942 में 'भारत छोड़ो' आंदोलन में उन्हें फिर ढाई वर्ष का कठोर कारावास हुआ।

डॉ. खूबचंद बघेल 1951 में आचार्य कृपलानी की किसान-मज़दूर पार्टी में शामिल हो गए। वे 1951 में विधानसभा के लिए निर्वाचित हुए और 1962 तक सदस्य रहे। 1967 में राज्यसभा के लिए चुने गए। व्यवसाय से चिकित्सक होने के बावजूद वे कृषि और कृषकों की उन्नति के लिए निरंतर प्रयासरत रहे। बघेल जी छत्तीसगढ़ के अनेक आदिवासी-किसान आंदोलनों के प्रेरणा स्रोत एवं नेतृत्वकर्ता थे। इन्होंने कृषि को उद्योग के समकक्ष विकसित करने की दिशा में अभूतपूर्व प्रयास किया। पृथक् छत्तीसगढ़ राज्य के लिए जन चेतना जाग्रत करने की दिशा में वे लगातार संलग्न रहे।

साहित्य-सृजन, लोकमंचीय प्रस्तुति तथा बोलचाल में डॉ. बघेल छत्तीसगढ़ी के पक्षधर थे। इन्हीं उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इन्होंने 1967 में रायपुर में 'छत्तीसगढ़ भ्रातृसंघ' नामक संस्था का गठन किया। 22 फरवरी, 1969 को इनका देहावसान हो गया। छत्तीसगढ़ शासन ने इनकी स्मृति में कृषि क्षेत्र में महत्व, उपलब्धि एवं अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए 'डॉ. खूबचंद बघेल' सम्मान स्थापित किया है।

सर्दियों में मेंढक कहाँ चले जाते हैं ?

मोहित मिडिल स्कूल का एक छात्र है। वह अति जिज्ञासु प्रवृत्ति का है। वह अपने चारों ओर होनेवाली घटनाओं एवं परिवर्तनों के बारे में हमेशा सोचता है। अपने शिक्षकों एवं अभिभावकों से 'क्यों', 'कैसे' पूछता ही रहता है।

इस बार बरसात शुरू हो गई थी। मेंढक की टर्र-टर्र की आवाज़ें सुनाई देने लगी थीं। मोहित सोच में पड़ गया। गर्मी एवं ठंड में तो इनकी आवाज़ें सुनाई नहीं देतीं और न ही ये दिखाई देते हैं। कहाँ चले जाते होंगे ये ठंड और गर्मी में!

आज स्कूल पहुँचते ही मोहित ने अपने शिक्षक से मेंढकों के विशेष मौसम में प्रकट एवं ग़ायब होने का कारण पूछा। उसके शिक्षक ने बताया कि "वर्षा ऋतु मेंढकों के विकास के लिए अनुकूल होती है। इस ऋतु में ये अपना जीवन-चक्र पूरा कर लेते हैं। जैसे ही वर्षा ऋतु समाप्त होती है, ये ग़ायब होने लगते हैं। शीत एवं ग्रीष्म ऋतु इनके लिए प्रतिकूल होती है, क्योंकि मेंढक एक उभयचर (जल एवं ज़मीन, दोनों में रहने वाला)।"

जब ठंड आती है, तब इनके शरीर का ताप भी कम होने लगता है। कम ताप में इनकी जीवन-क्रियाएँ जैसे - साँस लेना, भोजन पचाना आदि धीमी पड़ जाती हैं। ठंडे

मौसम से अपने आपको बचाने के लिए ये गीली मिट्टी में सिर के बल धँसने लगते हैं। पूरे ठंड के मौसम ये मिट्टी में यूँ ही धँसे रहते हैं। इनके मुख, नेत्र एवं कान बंद हो जाते हैं। उस समय ये त्वचा से साँस लेते हैं। जीवित रहने के लिए शरीर में जमा चर्बी का उपयोग करते हैं। उस समय वे कमज़ोर हो जाते हैं, परंतु मरते नहीं। उनकी उस अवस्था को शीत सुसुप्तावस्था कहते हैं।

फरवरी में तापमान बढ़ने पर इनकी सुसुप्तावस्था समाप्त हो जाती है। ये भूमि से बाहर आकर सक्रिय हो जाते हैं। मई में फिर तापमान बढ़ने पर इनके शरीर का ताप भी बढ़ने लगता है। इस मौसम से अपने आपको बचाने के लिए ये फिर गीली मिट्टी में धँस जाते हैं। जीवन की क्रियाएँ मंद पड़ जाती हैं। इस अवस्था को 'ग्रीष्म निष्क्रियता' अवस्था कहते हैं। मोहित शिक्षक की बातों को ध्यान से सुन रहा था। उसने अपने शिक्षक को यह नई जानकरी देने के लिए धन्यवाद दिया।

विधान-पुरुष : घनश्याम सिंह गुप्त

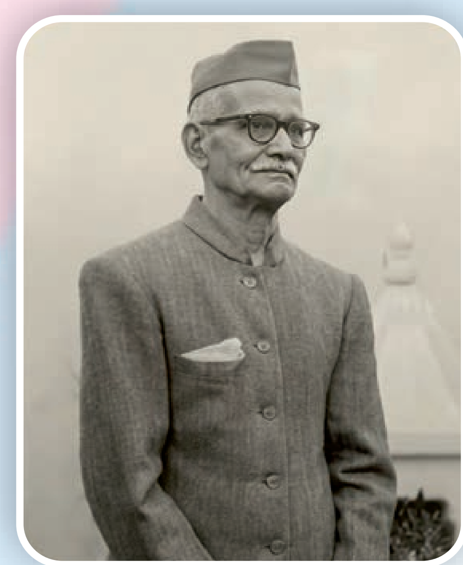

श्री घनश्याम सिंह गुप्त

राजनैतिक सेवाओं के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय कार्य करने वाले विरले ही होते हैं। श्री गैंद सिंह गुप्त के परिवार में घनश्याम सिंह गुप्त का जन्म 22 दिसंबर, सन् 1885 को दुर्ग में हुआ। बाल्यकाल में ही उनके हृदय में देश-सेवा की भावना जाग्रत हो गई थी। यही कारण है कि बी.एस.सी., एल.एल.बी. तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार में गणित एवं भौतिक शास्त्र में अवैतनिक प्रोफ़ेसर के रूप में कार्य किया।

गुप्त जी प्रारंभ से उग्रवादी विचारधारा के समर्थक थे। जब सन् 1920 में अँग्रेज़ों की दमन-नीति के विरोध में प्रस्ताव पारित हुआ, तब देश के सभी वर्ग के लोग इस आन्दोलन में सम्मिलित होने लगे। श्री घनश्याम सिंह अग्रगण्य थे। सन् 1921 में उन्होंने जेल की यातनाएँ सहीं। दुर्ग ज़िले के जंगल सत्याग्रह के संबंध में जबलपुर टाउन हॉल में दिए गए उनके ओजस्वी भाषण के तत्काल बाद उन्हें मंच पर गिरफ़्तार कर लिया गया। उन्हें छह माह की सज़ा हुई।

श्री गुप्त ने नमक सत्याग्रह में भी अपनी गिरफ़्तारी दी। उनकी इस गिरफ़्तारी से ही छत्तीसगढ़ में सन् 1931 में सविनय अवज्ञा आंदोलन तीव्र हुआ था। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार एवं मद्य-निषेध जैसे कार्यक्रमों में गुप्त जी निरंतर सक्रिय रहे। सन् 1933 में गाँधी जी के छत्तीसगढ़ प्रवास में श्री गुप्त जी लगातार गाँधी जी के साथ रहे। महात्मा गाँधी दुर्ग में घनश्याम सिंह गुप्त के निवास में ही ठहरे थे।

श्री गुप्त जी ने 17 जनवरी, सन् 1934 में "दुर्ग ज़िला हरिजन सेवा संघ" की स्थापना की तथा वे अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्हीं के प्रयासों से सन् 1936 में अंचल में खादी उद्योग प्रारंभ हुआ था। उनके रचनात्मक कार्य कांग्रेस के सिद्धांत के अनुसार हुआ

करते थे। सन् 1937 के चुनाव में मध्य प्रांत में कांग्रेस की सरकार बनी। श्री घनश्याम सिंह गुप्त विधान सभा अध्यक्ष निर्वाचित हुए। यहाँ विधानसभा अध्यक्ष के रूप में उन्होंने हिंदी भाषा का पुरज़ोर समर्थन कर उसका मार्ग प्रशस्त किया।

गुप्त जी की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक रुचि उनके प्रत्येक रचनात्मक कार्यों में परिलक्षित होती है। हिंदी भाषा के कट्टर समर्थक श्री गुप्त जी हिंदुस्तान समाचार के प्रथम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय अनुवाद समिति के भी सदस्य थे। उनके द्वारा लिखित महाराणा प्रताप, अफ़जल खाँ की तलवार, मेरे संस्मरण, शिवाजी का बघनखा, इत्यादि हिंदी की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

श्री गुप्त जी ने आर्य समाज के महत्वपूर्ण पदों पर रहकर अनेक कार्य किए। सांस्कृतिक चेतना के संवाहक श्री घनश्याम सिंह गुप्त जीवन पर्यंत राष्ट्र-सेवा में लगे रहे।